जीवन - ज्योति माला

आइन्स्टाइन

सन्तराम वत्स्य

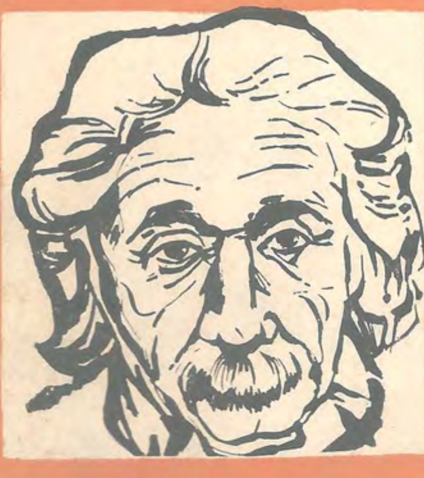

आइन्स्टाइन

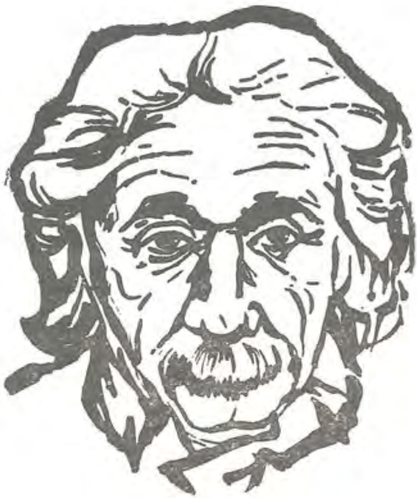

ज्ञान भारती
४/१४, रूपनगर,
दिल्ली-११०००७
द्वारा प्रकाशित

सर्वाधिकार
श्री सन्तराम वत्स्य

मूल्य : ४.००

संस्करण
१९८७

चोपड़ा प्रिंटर्स
मोहन पार्क, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२ में मुद्रित

[535-11-287/G]

IENSTAIEN by Santram Vatsya Price : Rs. 4.00

दो शब्द

"विज्ञान की व्यक्तिगत शाखाओं और उनके विकास में योग देने वाले मुख्य वैज्ञानिकों की जीवनियों का अध्ययन विज्ञान के वास्तविक अर्थ और उसकी आत्मा को ठीक तरह समझने के लिये जरूरी है। उसके पढ़ने से हमें जो स्फुरणा प्राप्त होती है, वह प्रायः विज्ञान पर लिखे गए अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण औपचारिक ग्रन्थों से अधिक होती है।"

(चन्द्रशेखर वेंकट रामन)

नोबेल पुरस्कार विजेता जगत-प्रसिद्ध महान् वैज्ञानिक श्री चन्द्रशेखर वेंकट रामन के ये वाक्य ही इस 'जीवन ज्योति-माला' की प्रेरणा हैं।

'जीवन ज्योति-माला' की इस प्रथम लड़ी में देश-विदेश के महान वैज्ञानिकों की जीवनियां प्रस्तुत की जा रही हैं।

वैज्ञानिक सबसे अधिक जिज्ञासु लोग होते हैं। उनके मन में अपने चारों ओर की वस्तुओं के बारे में तरह-तरह के प्रश्न उठते हैं और वे उन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए अनेक पुस्तकें पढ़ते हैं, उन वस्तुओं का बारीकी से निरीक्षण और परीक्षण करते हैं। 'क्यों ? और कैसे ?' का उत्तर ही हमारी सारी वैज्ञानिक खोजें हैं।

आज के युग को इन वैज्ञानिक खोजों के कारण ही 'विज्ञान का युग' कहा जाता है। इन खोजों के कारण ही आज हम अनेक सुख-सुविधाओं का उपभोग कर रहे हैं। कुछ दशक पूर्व असम्भव लगने वाली बातें आज इतनी साधारण हो गई हैं कि उनकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। रेल-मोटर, हवाई-जहाज, बिजली, कैमरा, एक्सरे, सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, ग्रामोफोन, परमाणु बम और अन्तरिक्ष-यान आज हमें आश्चर्यचकित नहीं करते। पर यदि इन खोजों की कहानी आप पढ़ें तो अवश्य चकित रह जाएं। तब आपको यह भी पता चल जाएगा कि इन

खोजों के पीछे अनेक वैज्ञानिकों की वर्षों की सतत साधना है। किसी वैज्ञानिक के मन में एक बात आयी और उसने परीक्षणों तथा प्रयोगों द्वारा उसका पता लगाना प्रारम्भ किया। उसी खोज को बाद के वैज्ञानिकों ने और आगे बढ़ाया और इस प्रकार अनेक वर्षों में वह कार्य पूरा हुआ। विज्ञान की एक-एक खोज में अनेक राष्ट्रों और युगों के व्यक्तियों का योग है।

ज्ञान का यह भण्डार पुस्तकों में हम सबको मिल सकता है, उससे लाभ उठाकर, हम नई खोजों और विज्ञान के नए चमत्कारों की दिशा में आगे से आगे बढ़ सकते हैं।

पुस्तकों में संचित ज्ञान का लाभ उठाकर, इसे सीढ़ी बनाकर नए आविष्कारों और खोजों तक पहुंचाने वाला आगामी युग का वैज्ञानिक कौन होगा ? वह आप भी हो सकते हैं।

इन जीवनियों को पढ़कर यह स्पष्ट पता चल जाएगा कि वैज्ञानिक खोजें संयोगमात्र या किसी चमत्कार पर आधारित न होकर वर्षों के अथक परिश्रम का परिणाम हैं। इन जीवनियों को पढ़कर जहां हमें विज्ञान के सम्बन्ध में अनेक बातों का पता लगेगा, वहां उन गुणों से भी परिचय होगा, जिनके कारण वैज्ञानिक सफल हो सके।

विज्ञान के जिज्ञासुओं और छात्रों के लिए वैज्ञानिकों के जीवन-चरित्रों का अध्ययन बड़े महत्त्व का है। कुछ शिक्षा-शास्त्रियों का तो यह मत है कि विज्ञान की प्रारम्भिक शिक्षा वैज्ञानिकों के जीवन-चरित्रों द्वारा ही शुरू होनी चाहिए।

पाठकों की रुचि विज्ञान में बढ़े, वे जीवन में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाएं और निरीक्षण और परीक्षण के अभ्यस्त बनें, इस आशा पर विश्वास के साथ मैं इसे प्रस्तुत कर रहा हूं।

—सन्तराम वत्स्य

आइन्स्टाइन

परमाणु बम

६ अगस्त, १९४५ को जापान के हिरोशिमा नगर पर अमेरिका ने परमाणु बम का विस्फोट किया।

क्या आप जानते हैं कि इस अकेले बम से कितनी हानि हुई? ६०००० लोग मारे गये। १००००० घायल हो गए। २००००० लाख बेघर-बार हो गए। सारा नगर तहस-नहस हो गया। छः सौ मुहल्लों वाला यह नगर मिट्टी में मिल गया।

इसके कुछ ही दिनों बाद इसी तरह का दूसरा बम जापान के एक दूसरे नगर पर गिराया गया। नगर का नाम है नागासाकी। वहां भी भयंकर विनाश हुआ।

इस अथाह जनसंहार को देख कर जापान सरकार ने हथियार डाल दिये। इस प्रकार दूसरे विश्वयुद्ध का अंत हुआ।

यह एटम बम किसने बनाया था? क्या इसको बनाने वाले जानते थे कि यह इतना भयंकर होगा? यदि जानते थे तो फिर उन्होंने बम बनाया ही क्यों

जिससे कुछ ही देर में पूरे का पूरा नगर धूल का ढेर बन गया ?

यह बम अलबर्ट आइन्स्टाइन की खोज के आधार पर अमरीका ने बनाया था। वह अच्छी तरह जानता था कि इसकी संहारक शक्ति कितनी है। इस बम का विस्फोट होने से छः वर्ष पूर्व आइन्स्टाइन ने अमेरिका के तत्कालीन प्रेसीडेंट को लिखा था :

"आगामी कुछ वर्षों में वैज्ञानिक यूरेनियम को एक नए और महत्त्वपूर्ण शक्ति के स्रोत के रूप में प्रयोग करने में सफलता प्राप्त कर लेंगे। इस तरह का एक ही बम यदि किसी बंदरगाह पर गिराया गया तो बंदरगाह के साथ ही निकटवर्ती क्षेत्र को भी भस्मसात् कर देगा।"

आइन्स्टाइन का विचार था कि एटम शक्ति का डर जर्मनी की नाज़ी सरकार को भयभीत कर देगा और इसके प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यदि जर्मनीवाले अमरीका से पहले परमाणु बम बनाने में सफल हो जाते तो संसार के सामने एक भयंकर संकट खड़ा हो जाता। किन्तु ऐसा हुआ नहीं।

एटम बनाने का आइन्स्टाइन को बड़ा पछतावा हुआ। आइन्स्टाइन ने तो इसे मनुष्य मात्र की

सेवा के कार्य में प्रयोग कराने का सपना देखा था। आज यह सपना भी सच्चा हो रहा है।

आइन्स्टाइन कौन था ? यह एटम क्या है ? इस की दानव जैसी शक्ति का रहस्य क्या है ? और यह मनुष्य जाति की सेवा किस तरह कर सकता है ? यह सब आप जानना चाहेंगे।

आइन्स्टाइन का जीवन-चरित्र अगले पृष्ठों में आप पढ़ेंगे। पर परमाणु की बारीकियां समझाना-समझना न संभव है न उद्देश्य।

बचपन और शिक्षा

अलबर्ट आइन्स्टाइन का जन्म १४ मार्च, १८७९ ई० को जर्मनी के उल्म नामक नगर में हुआ था। आइन्स्टाइन के पिता का नाम हरमान आइन्स्टाइन और माता का नाम पाउलीन आइन्स्टाइन था।

आइन्स्टाइन के पिता का स्वभाव एक जगह टिक कर कोई एक काम करने का नहीं था। कभी यहां तो कभी वहां। कभी यह, तो कभी वह। इस पर भी वे सदा प्रसन्न रहते। वे यहूदी धर्म को मानने वाले थे। पर धर्म से उनका गहरा लगाव नहीं था।

उन दिनों जर्मनी में बिस्मार्क का राज्य था।

बिस्मार्क की फौज का खूब दबदबा था। वह बड़ा महत्त्वाकांक्षी था तथा फौजी शक्ति को बढ़ाने में लगा हुआ था।

अलबर्ट आइन्स्टाइन के जन्म के साल भर बाद ही इनका परिवार उल्म छोड़ कर म्युनिख में आ बसा।

हरमान की एक छोटी-सी फैक्ट्री थी। वह स्वयं भी फैक्ट्री में काम करता था। यही परिवार की जीविका का साधन था।

अलबर्ट का एक चचा भी था। वह कुंआरा ही था और इंजीनियर का काम जानता था। वह भी बड़े भाई के साथ रहने लगा और फैक्टरी के काम में सहायता करने लगा।

अलबर्ट छुटपन में साधारण बालकों से भी गया-बीता था। उसने बोलना सीखने में बड़ी देर लगाई। उसे कुछ बोलते न देखकर माता-पिता को चिंता हुई। बेचारे सोचने लगे कि यह कहीं गूंगा न निकले। अलबर्ट बच्चों के साथ खेलता भी नहीं था। आप अकेला भी नहीं खेलता। बस, गुमसुम बना रहता। इसी से माता-पिता ज्यादा घबराए। सोचने लगे कि कहीं इस का मस्तिष्क ही कमजोर न हो।

अलबर्ट की मां को संगीत से बड़ा प्यार था। वे

स्वयं भी अच्छा गा-बजा लेती थीं। वे अलबर्ट को भी संगीत सिखाने का प्रयत्न करने लगीं। प्रारम्भ में तो बालक अलबर्ट को संगीत सीखना झंझट-सा लगता, किन्तु कुछ सीख लेने पर उसे अच्छा लगने लगता। उसने वायलिन बजाने में अच्छी प्रगति की। फिर तो अलबर्ट और संगीत का साथ जीवन भर निभा।

बड़ा विचित्र बालक था अलबर्ट। वह जब बोलने लग भी पड़ा तो भी बहुत कम बोलता और रुक-रुककर बोलता। अपने हमजोली बालकों से खेलता भी नहीं। भाग-दौड़, उठा-पटकी जैसाकि बच्चे करते हैं, कुछ नहीं करता। मेहनत के खेल से भी जी चुराता। सड़कों पर परेड करते सिपाहियों को देखने के लिए बच्चे दौड़े-दौड़े आते पर एक अलबर्ट था जो उनकी ओर झांक-कर भी नहीं देखता। दूसरे बच्चे सिपाहियों को परेड करते देखते और सिपाही बनकर उनकी नकल उतारते। पर अलबर्ट कभी इस खेल में भाग नहीं लेता। उसे ये सिपाही और उनकी यह परेड जरा न सुहाती। पता नहीं क्यों, वह मन ही मन इनसे भय मानता।

इस बच्चे का मन बहलाना भी माता-पिता के लिए एक समस्या थी। वे उसे तरह-तरह की चीजें खेलने के लिए लाकर देते। एक दिन अलबर्ट के पिता हरमान

ने एक डिबिया जैसा खिलौना लाकर दिया। वास्तव में यह खिलौना नहीं, दिग्दर्शक था। अंग्रेजी में इसे कम्पास कहते हैं। दिग्दर्शक से दिशाओं का ज्ञान होता है। इसमें घड़ी की तरह एक सुई लगी रहती है। इस डिबिया को चाहे जिस ओर घुमाइये, सुई सदा उत्तर दिशा की ओर रहेगी। उसके पिता ने यह बात उसे समझा दी। डिबिया को घुमाकर यह भी दिखा दिया कि सुई सदा उत्तर दिशा की ओर ही रहती है। इस विचित्र खिलौने ने बालक अलबर्ट का मन मोह लिया। इस खिलौने ने रहस्यमयी वस्तुओं को जानने की भूख उसमें जगा दी। प्रकृति की अनजानी शक्तियों से यह उसका पहला परिचय था।

म्यूनिख नगर में उस युग में एक भी सरकारी पाठशाला नहीं थी। कुछ धार्मिक संस्थाएं प्राथमिक पाठशालाएं चलाती थीं। अलबर्ट को घर के सबसे पास वाली पाठशाला में भर्ती करा दिया गया। इसका संचालन कैथोलिक लोगों के हाथ में था। आइन्स्टाइन के माता-पिता थे तो यहूदी पर धर्म में उनकी श्रद्धा बहुत कम थी। प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद अलबर्ट को माध्यमिक शिक्षा के लिए एक माध्यमिक पाठशाला में भर्ती कराया गया। अलबर्ट पढ़ने-लिखने

में कोई बहुत तेज नहीं था। इन वर्षों में उसे कोई विशेष सफलता भी नहीं मिली।

अलबर्ट के चाचा जो इन्जीनियर थे, अपने भतीजे की पढ़ाई में रुचि लेने लगे। विशेष रूप से गणित, बीजगणित और रेखागणित विषयों में उन्होंने बालक अलबर्ट की रुचि जागृत की। उन्होंने अलबर्ट को समझाने का प्रयत्न किया कि बीजगणित द्वारा किसी प्रश्न को कितनी जल्दी निकाला जा सकता है। उन्होंने रूखा समझे जाने वाले इस विषय को ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया कि अलबर्ट को रोचक लगने लगा। प्रश्नों के उत्तर खोजने में उसे पहेलियां बूझने जैसा आनंद आने लगा। और जब यूक्लिड की ज्यामिति उसे पढ़ने को मिली तब तो अलबर्ट के सामने विचित्र ज्ञान का एक द्वार ही खुल गया।

आइन्स्टाइन ने बड़े होकर कहा था कि बचपन में मुझे दो चीज़ों ने सबसे अधिक प्रभावित किया था: एक दिग्दर्शक ने और दूसरे ज्यामिति ने। ज्यामिति के बारे में तो उनका कहना था: "पाठशाला के उन दिनों में यूक्लिड की ज्यामिति हाथ आते ही यदि हम में से किसी को यह नहीं लगता था कि मैं दूसरी दुनिया में पहुंच गया हूं तो हम उसके बारे में यही समझते

थे कि इसे प्रभु ने विचार और कल्पना शक्ति से वंचित रखा है।"

इस उमर में अलबर्ट का स्वभाव सभी कुछ धीरे करने का था। उसके सोखने की गति भी काफी धीमी थी। दूसरे लड़कों से धीमी। प्रश्नों के उत्तर देने में भी वह देर लगाता। पर उसके उत्तर होते सही थे।

खेल-कूद में उसकी रुचि नहीं थी। अपने साथियों से वह ज्यादा मेल-जोल भी न बढ़ाता। अलग-अलग रहता। पाठशाला आते-जाते भी किसी के साथ नहीं चलता। खोया-खोया-सा, मन ही मन कुछ सोचता-सा रहता।

हां, बस उसे एक ही चाव था। वह छोटे-छोटे गीत बनाता और उन्हें गाता रहता। यह काम भी वह एकान्त में ही करता। इस समय कोई आ जाता तो वह चुप हो जाता।

जिन दिनों अलबर्ट १५ वर्ष का था, उसके पिता के कारोबार की हालत खराब हो गई। तब ये लोग यहां से इटली के मिलान नगर में जा बसे। पर अलबर्ट म्यूनिख में ही रह गया। उसकी पढ़ाई चल रही थी और वह वहां से डिप्लोमा पाठ्यक्रम पूरा करके ही आना चाहता था।

म्यूनिख में पढ़ते हुए उसे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अलबर्ट यद्यपि गणित में सबसे प्रतिभाशाली छात्र समझा जाता था तथापि अन्य विषयों में, जहां विषय को रटना पड़ता था, वह बहुत पिछड़ा हुआ था। दूसरा कारण यह था कि जर्मनी में यहूदी धर्मावलंबियों को अच्छा नहीं समझा जाता था। उन्हें तरह-तरह से सताया जाता था।

विद्यालयों में अध्यापक भी बड़ी कठोरता का व्यवहार करते थे। बात-बात पर कठोर दण्ड देते थे। उनको हर बात को मानना आवश्यक था।

अलबर्ट स्वभाव से नम्र और संकोची था। इस स्वभाव के कारण भी दूसरे छात्र उसे परेशान करते थे। अन्याय को चुपचाप सहना उसे अच्छा नहीं लगा। अब उसने 'जैसे को तैसा' की नीति का अनुसरण किया। अपने दब्बूपन को उसने छोड़ दिया। अध्यापकों की उल्टी-सीधी हर बात को मानना भी उसके लिए संभव नहीं हुआ। अन्धभक्ति उससे नहीं हो सकी। यही कारण था कि उसे विद्यालय से छुट्टी दे दी गई। बात यह थी कि वह अपने अध्यापकों से ऐसे प्रश्न पूछता था, जिनके उत्तर देना उनके लिए कठिन था। वे मुख्याध्यापक से उसके व्यवहार के बारे में शिकायतें

करते रहते थे। इसलिए उसका नाम काट दिया गया। अब अलबर्ट मिलान (इटली) में अपने पिता के पास चला गया।

मिलान नगर में जाकर उसने चैन की सांस ली। यहां का मौसम, रहन-सहन और वातावरण उसके मन को भा गया।

यहां इस समय उसे विद्यालय में प्रवेश नहीं मिला। प्रवेश नए शिक्षा सत्र से होना था। बीच के खाली समय का उपयोग उसने सैर-सपाटे और स्वतन्त्र अध्ययन में किया।

अब फिर विद्यालय में प्रवेश की समस्या थी। कहां पढ़े और क्या पढ़े? उसे अपने भविष्य का निश्चय करना था। उसने अपने मन को टटोला। तब वह इस निश्चय पर पहुंचा कि गणित और भौतिकी ही मेरी रुचि और प्रवृत्ति के विषय हैं। मुझे इन्हीं में विशेष योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। यही सब सोचकर ज्यूरिख (स्विट्जरलैंड) के प्रसिद्ध स्विस फैडरल पालिटैक्निक विद्यालय में प्रवेश पाने का निश्चय किया। प्रवेश पाने के लिए जो प्रवेशिका परीक्षा होती थी, अलबर्ट उसमें बैठा। जब परीक्षा का परिणाम निकला तो गणित में सबसे अधिक अंक और भाषा

तथा दूसरे विषयों में फेल।

पालिटैक्निक के डायरेक्टर गणित के इस प्रतिभाशाली छात्र की योग्यता से प्रभावित हुए। उन्होंने एक ऐसा रास्ता निकाला कि अलबर्ट जिन विषयों में पिछड़ा हुआ है, उनकी कमी को 'अराऊ' में जाकर पूरा कर ले और फिर उसे पालिटैक्निक में प्रवेश दे दिया जाए।

इसके अनुसार वह अराऊ चला गया और कमजोर विषयों में योग्यता प्राप्त कर ली। अब उसे पालिटैक्निक में प्रवेश मिल गया।

स्विट्जरलैंड में पढ़ाई की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। जर्मनी की तरह यहां के अध्यापक फौजी अधिकारियों जैसा व्यवहार नहीं करते थे। पढ़ाई में रटने का महत्त्व भी यहां नहीं था। अध्यापक छात्रों के कुछ पूछने पर खीझते नहीं थे। इसके विपरीत छात्रों के प्रश्नों को ध्यान से सुनते और उनका समाधान करते। वे छात्रों को प्रश्न पूछने के लिए बढ़ावा भी देते थे। अलबर्ट को लगा कि यहां के विद्यालयों की तुलना में जर्मनी के विद्यालय तो जेल जैसे थे। अब उसका मन भी लगने लगा।

किन्तु एक नई कठिनाई सामने आई। अलबर्ट के पिता ने यहां आकर जो नया धन्धा शुरू किया था

वह जम नहीं पाया था। इसलिए हाथ तंग था और अलबर्ट की पढ़ाई का खर्च जुटाने में कठिनाई हो रही थी। संयोग की बात कि यहां उनके एक प्रभावशाली संबंधी रहते थे। उन्होंने अलबर्ट को विश्वविद्यालय से ही कुछ आर्थिक सहायता दिलवा दी।

अलबर्ट की केवल मात्र यही महत्त्वाकांक्षा थी कि वह पढ़-लिख कर अध्यापक बनेगा। विषयों का चुनाव करते समय भी उसने उसी उद्देश्य को सामने रखा था। इक्कीस वर्ष की अवस्था में शिक्षण का प्रमाण-पत्र मिल गया। पढ़ाई समाप्त हुई। इन्हीं दिनों १९०१ ई० में अलबर्ट ने स्विट्जरलैंड की नागरिकता ग्रहण कर ली।

गणित और भौतिकी में अलबर्ट की योग्यता की तुलना नहीं थी। इन विषयों में उसे प्रशंसा-पत्र भी मिले थे। पर अध्यापक की नौकरी नहीं मिली, नहीं मिली।

नौकरी और विवाह

इन बेकारी के दिनों में अलबर्ट कभी यहां तो कभी वहां, बच्चों को पढ़ाने की ट्यूशन करके, किसी तरह पेट भरने के लिए कुछ कमाता रहा।

इस तरह बहुत दिनों तक बेकार भटकने के बाद जब उसे अपना मनचाहा अध्यापकी का काम नहीं मिला तो उसने बर्न के स्विस पेटेंट विभाग में नौकरी कर ली। यह नौकरी भी उसके एक परिचित के प्रभाव से मिली थी। यद्यपि इस नौकरी में वेतन बहुत कम था पर काम एक सीमा तक अलबर्ट को रुच गया। उसे पेटेंट विभाग में आने वाले आवेदन-पत्रों की जांच-पड़ताल करनी होती थी और पेटेंट के लिए प्रस्तुत यंत्रों आदि को देखना पड़ता था। गणित और भौतिकी के विशेषज्ञ के लिए यह कोई उपयुक्त काम तो नहीं था पर यंत्र-विज्ञान में जो नये-नये उपकरण बन रहे थे, उन्हें देखने-परखने का मौका तो मिलता ही था। इसका यह लाभ हुआ कि अलबर्ट को यंत्र-विज्ञान की भी अच्छी जानकारी हो गई। यह नौकरी १९०२ में मिली थी।

नौकरी के साथ-साथ अलबर्ट ने भौतिकी के प्रयोग भी जारी रखे। ये प्रयोग वह अपने घर पर ही बनाई गई प्रयोगशाला में करता था। गणित में भी उसने अपना अभ्यास जारी रखा। नक्षत्रों के प्रकाश और गति के संबंध में वह अध्ययन काल से ही खोज कर रहा था। गणित और भौतिकी के इन उलझे प्रश्नों

का समाधान खोजने में उसे बड़ा आनंद आता था। वह इन विषयों में खो जाता।

एक लड़की थी मिलेवा मारित्श। उसकी भी गणित और भौतिकी में गहरी रुचि थी। अलबर्ट के घर की प्रयोगशाला में वह भी उसके साथ प्रयोग करती थी। एकसमान रुचियों और साथ-साथ प्रयोग करने से उनकी घनिष्ठता बढ़ती गई। अंत में १६०३ में वे मित्र से पति-पत्नी बन गए। स्विस पेटेंट कार्यालय की नौकरी और घर पर प्रयोगों का क्रम जारी रहा। मिलेवा मारित्श दो पुत्रों की मां बन गई। एक बेटे का नाम था अलबर्ट और दूसरे का एडवर्ड। चार सदस्यों का यह छोटा-सा परिवार कम सुख-सुविधाओं के होते हुए भी संतुष्ट था और चुपचाप विज्ञान की साधना जारी थी।

परमाणु युग का आरंभ

१६०५ का वर्ष परमाणु युग की आधार शिला रखने का वर्ष है। यह आधार-शिला अलबर्ट आइन्स्टाइन द्वारा गढ़ी जाकर उन्हीं के हाथों रखी भी गई।

न्यूटन के जिस सिद्धान्त को वैज्ञानिक सही मानकर चल रहे थे, वह उसे भ्रामक प्रतीत हुआ। गत दो सौ

वर्षों से इन सिद्धांतों को मान्यता प्राप्त थी। जहां दूसरे वैज्ञानिक पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों को अंधविश्वास के साथ अपनाए हुए थे, वहां आइन्स्टाइन ने देखा कि नई वैज्ञानिक खोजों के साथ वे मेल नहीं खाते। पर विज्ञान में यह नहीं होता कि आप यों ही किसी का खंडन या मंडन कर दें। वहां तो सभी कुछ सिद्ध कर के दिखाना होता है। खंडन भी और मंडन भी। तो जब आइन्स्टाइन को जांच-परख और गणना के बाद पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि मेरी बात ठीक है तो यह बात वैज्ञानिकों के सामने रखने का निश्चय किया। तरीका यह है कि जब कोई वैज्ञानिक कोई नई बात या सिद्धांत खोजता है तो उस विषय को लेखबद्ध करके किसी वैज्ञानिक पत्रिका में प्रकाशित कर देता है। जब दूसरे वैज्ञानिक इस लेख को पढ़ते हैं तो वे इसमें लिखी बातों पर विचार करते हैं। उसमें लिखी बातों के सच-झूठ की परख करते हैं। उसमें कोई बात उन्हें ठीक नहीं लगती है तो तर्क, युक्ति, प्रयोग, गणित या दूसरे उपायों से उसका खंडन करते हैं।

आइन्स्टाइन ने अपनी खोजों और गणित पर आधारित कई लेख १६०५ ई० में प्रकाशित कराए। इनमें कुछ इस प्रकार थे :

१. प्रकाश की उत्पत्ति और रूपान्तरण
२. ऊर्जा की जड़ता
३. चल-पिंडों की विद्युत गतिकी
४. आणविक आयामों का नया निर्धारण
५. ब्राउनियन गति (वायु तथा तरल पदार्थों में इधर-उधर अनियमित रीति से तैरने वाले सूक्ष्मकणों की चाल का सिद्धांत)

इससे पूर्व एक अन्य वैज्ञानिक मिचेलसन ने भी यह सिद्ध कर दिया था कि प्रकाश की गति न्यूटन के गति-संबंधी नियमों के साथ पूरा-पूरा मेल नहीं खाती। किंतु मिचेलसन यही नहीं बता सके कि प्रकाश की गति का वह कौन-सा नियम है जिसके अनुसार चल-पिंडों की गति की व्याख्या की जा सके। आइन्स्टाइन की स्थापना थी कि प्रकाश का स्रोत चाहे कुछ भी हो और द्रष्टा कहीं भी खड़ा हो या किसी भी दिशा में चल रहा हो, प्रकाश की गति सभी ओर एक जैसी होगी।

आइन्स्टाइन के लेख प्रकाशित हो गए। पर वह कोई नामी वैज्ञानिक नहीं था जो दूसरे प्रतिष्ठित वैज्ञानिक उसके लेख की ओर विशेष ध्यान देते। उस समय कौन जानता था कि ये लेख न केवल दो सौ

वर्ष पुरानी वैज्ञानिक मान्यताओं को झुठला देंगे अपितु परमाणु युग की नींव भी डालेंगे। यही नहीं, भौतिकी के सिद्धांतों के अतिरिक्त समस्त संसार पर भी इन का प्रभाव पड़ने वाला है, किसी ने यह कल्पना नहीं की थी। संभवत: आइन्स्टाइन भी उस समय तो इन सिद्धांतों के दूरगामी व्यापक प्रभावों और परिणामों की कल्पना नहीं कर सके होंगे।

उन्होंने बताया था कि देश, काल और पदार्थ सब परस्पर संबंधित हैं, गुंथे हुए हैं। पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है और पदार्थ वास्तव में 'सोई हुई ऊर्जा' ही है। दूसरे शब्दों में जैसे ऊर्जा या शक्ति ही घनीभूत होकर पदार्थ बन गई है।

पदार्थ में सोई हुई ऊर्जा को मापने का सिद्धान्त भी उन्होंने खोज निकाला। उनका यह सिद्धान्त विश्व-विख्यात है। $E=MC^2$ समीकरण द्वारा प्रकट किया जाता है। यहां E ऊर्जा है, M संहति है और C प्रकाश का वेग है।

इसे हिन्दी में ऊ=संप्र^{२} लिखा जाता है। ऊ ऊर्जा; स संहति; प्र प्रकाश का वेग।

प्रकाश की गति ३००००० किलोमीटर प्रति सैकिंड होती है।

आइन्स्टाइन ने जो खोजें कीं; वे इतने उच्चस्तर के गणित पर आधारित हैं तथा उनका क्षेत्र और परिणाम इतना व्यापक है कि साधारण लोगों की पहुंच के बाहर हैं। जिस खोज के कारण लोग उन्हें विशेष रूप से जानते-मानते हैं, वह आपेक्षिकता का सिद्धांत है। इस सिद्धांत के विशेष रूप का प्रकाशन उन्होंने सन् १९०५ में किया था। इस सिद्धांत ने उस समय की अनेक आधारभूत धारणाओं को बदल दिया। पहले तो वैज्ञानिक इस सिद्धांत को कल्पना की उड़ान ही समझते रहे, किन्तु धीरे-धीरे विश्वभर के वैज्ञानिकों ने इसे पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया। बाद में सन् १९१५ में उन्होंने इसी सिद्धांत को विस्तृत रूप दिया और प्रकाशित किया। इसे आपेक्षिकता का सामान्य सिद्धांत कहते हैं।

इन खोजों का लेख रूप में प्रकाशन होने पर, उस समय के एक महान् भौतिकी विशेषज्ञ प्लांक ने इसे सर्वप्रथम समझा और सराहा।

अब आइन्स्टाइन की इच्छा हुई कि कहीं विश्वविद्यालय में गणित और भौतिकी पढ़ाने का काम किया जाए। पर कोई उपयुक्त स्थान नहीं मिल सका। वे यथापूर्व पेटेंट कार्यालय में नौकरी करते रहे। घर

पर खोज का कार्य पहले ही की तरह चालू रहा। १९०९ ई० तक वे उसी जगह काम करते रहे। इस बीच उन्होंने ज्यूरिच विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० (साइंस के डाक्टर) की उपाधि प्राप्त कर ली। वे अपने लेख भी वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित कराते रहे। इसी वर्ष १९०९ में ज्यूरिच विश्वविद्यालय में उन्हें प्राध्यापक का पद मिल गया। एक वर्ष बाद ही प्राग विश्वविद्यालय ने उन्हें सैद्धांतिक भौतिकी के प्राध्यापक का पद प्रदान किया। आइन्स्टाइन ज्यूरिच से प्राग चले गये। किंतु १९१२ ई० में फिर ज्यूरिच लौट आए और वहां के पोलिटैक्निक में प्राध्यापक नियुक्त हो गए। सन् १९१३ में जर्मनी चले गए। वहां बर्लिन में प्रुशियन विज्ञान अकादमी में गवेषणा संबंधी पद के साथ, बर्लिन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक तथा भौतिकी के कैसर विलहेल्म इंस्टिट्यूट के संचालक का पद भी स्वीकार किया। इस प्रकार एक साथ तीन पदों का भार उन्होंने संभाला।

जब आइन्स्टाइन जर्मनी जाने लगे तो उनकी पत्नी दो बच्चों समेत ज्यूरिच में ही रह गई। सम्भवतः पति-पत्नी एक-दूसरे से संतुष्ट नहीं थे और साथ-साथ रहने के इच्छुक भी नहीं।

वे जर्मनी में केवल इसलिए लौट आये थे कि संभवतः यहां वे विज्ञान की अधिक सेवा कर सकेंगे। वैसे वे १९०१ ई० में स्विट्जरलैंड की नागरिकता स्वीकार कर चुके थे। जर्मनी में रहते हुए भी वे स्विस नागरिक ही बने रहे। अगले बीस वर्ष अर्थात् १९१३ से १९३३ तक वे जर्मनी में रह कर ही विज्ञान साधना करते रहे।

नोबेल पुरस्कार तथा अन्य सम्मान

आइन्स्टाइन अब तक विज्ञान के क्षेत्र में अपनी असाधारण श्रेष्ठता प्रमाणित कर चुके थे। विज्ञान जगत ने उनके प्रस्थापित सिद्धांतों को राई-रत्ती सही पाया था। उनके सिद्धांतों के दूरगामी परिणाम दिनों-दिन अधिकाधिक स्पष्ट होते जा रहे थे।

प्रुशियन विज्ञान अकादमी ने इन्हें अपना सदस्य चुनकर सम्मानित किया। इनके लिए शोध-वृत्ति भी नियत कर दी ताकि आइन्स्टाइन स्वतंत्र रूप से विज्ञान-साधना में प्रवृत्त हो सकें। उनके मार्ग में कोई बाधा न रहे।

जेनेवा, मैनचेस्टर, रॉस्टक तथा प्रिंसटन विश्व-विद्यालयों ने इन्हें डाक्टरेट की सम्मानित उपाधियां

प्रदान कीं। ऐमस्टैडंम (नीदरलैंड) तथा कोपेनहेगेन (डेनमार्क) की अकादमियों ने इन्हें अपना सम्मानित सदस्य चुना। सन् १९२१ में लंदन की विश्वविख्यात रायल सोसायटी ने भी इन्हें अपना सदस्य चुना।

इस वर्ष (१९२१ ई०) संसार का सबसे बड़ा नोबेल पुरस्कार आइन्स्टाइन को मिला। यह पुरस्कार उन्हें सैद्धांतिक भौतिकी की सेवा (आपेक्षिकता सिद्धांत का प्रतिपादन तथा विशेषकर प्रकाश वैद्युत प्रभाव के नियमों की खोज) के लिए मिला था।

रायल सोसायटी ने १९२५ में इन्हें कोपली पदक से तथा सन् १९२६ में रायल ऐस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी ने भी एक स्वर्ण पदक से सम्मानित किया।

दूसरा विवाह

१९१३ में आइन्स्टाइन जर्मनी चले गये थे किंतु उनकी पत्नी मारित्श तथा दो पुत्र ज्यूरिच ही रह गये थे।

दस वर्ष तक गृहस्थ जीवन बिताने के बाद आइन्स्टाइन फिर अकेले हो गये थे।

बर्लिन में आइन्स्टाइन के कई संबंधी रहते थे। कुछ दूर के, कुछ पास के। आइन्स्टाइन के बर्लिन आने

पर सभी को प्रसन्नता हुई। वे प्रायः इनके पास आते रहते। बर्लिन स्थित संबंधियों में आइन्स्टाइन की एक चचेरी बहन भी थी। दोनों बचपन में साथ-साथ खेले हुए थे। इसका नाम था एल्से आइन्स्टाइन। कई वर्ष पूर्व उसका विवाह हो चुका था और दो बच्चे भी थे। परन्तु उसका अपने पति से संबंध-विच्छेद हो चुका था। बच्चे मां के साथ ही रहते थे।

अलबर्ट आइन्स्टाइन और एल्से आइन्स्टाइन दोनों की स्थिति एक जैसी थी और दोनों एक-दूसरे के पूरक हो सकते थे। अलबर्ट आइन्स्टाइन के बर्लिन आ जाने पर इन दोनों पूर्व-परिचितों का मेल-जोल बढ़ता गया और कुछ समय बाद उन्होंने आपस में विवाह भी कर लिया। दोनों सुख से रहने लगे। एल्से आइन्स्टाइन की सुख-सुविधाओं का पूरा ध्यान रखती। उन्हें अधिकाधिक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती और घर-गृहस्थी के झंझटों में भागीदार नहीं बनाती।

आइन्स्टाइन बर्लिन लौटे ही थे कि प्रथम विश्व-युद्ध प्रारंभ हो गया। इस युद्ध की पहल जर्मनी ने ही की थी। जर्मनी के विरुद्ध लड़ने वाले देश थे, ब्रिटेन, रूस और फ्रांस। जर्मनी के शासक समझते थे कि हम अपनी शक्ति के बलबूते पर अपना साम्राज्य स्थापित

कर लेंगे। जर्मनी ने अपने आक्रमण को उचित सिद्ध करने के लिए प्रचार किया कि शत्रु देश हमारे विरुद्ध युद्ध छेड़ने की गुप्त योजना बना रहे थे। हमें उनकी योजना का पता लग गया और आक्रमण में पहल करके हमने उनकी योजना को असफल कर दिया। इस युद्ध का जर्मनी के अनेक विद्वानों ने भी समर्थन किया और इसे उचित बताया। पर जर्मनी के यहूदी नागरिकों ने इस युद्ध को अनुचित बताया। आइन्स्टाइन को तो युद्ध जैसे नर-संहार के कार्य से बचपन से ही घृणा थी। उन्होंने भी इस युद्ध का समर्थन नहीं किया, उल्टे विरोध ही किया।

इस युद्ध में जर्मनी की हार हुई। हार का कारण यह बताया गया कि यहूदी धर्मावलंबियों ने सहयोग नहीं दिया। फिर क्या था! जर्मनी में यहूदियों का विरोध प्रारंभ हो गया। यहूदियों को देश का शत्रु समझा जाने लगा।

आइन्स्टाइन भी क्योंकि यहूदी धर्मावलंबी थे, इसलिए उनका भी विरोध होने लगा। उनका सामाजिक बहिष्कार करने तथा अन्य उपायों से तिरस्कार करने के प्रयत्न होने लगे। यद्यपि जर्मनी में उनका विरोध दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था, फिर भी वे अपने

विचारों पर दृढ़ता से जमे रहे। वे इस पागलपन से बहुत क्षुब्ध थे फिर भी दत्तचित्त होकर अपने काम में लगे रहे।

१९२१ में आइन्स्टाइन को जब नोबेल पुरस्कार मिला तो जर्मनी के लोग उनकी इस सफलता से प्रसन्न होने की अपेक्षा जल-भुन उठे। उनकी खोज को झुठलाने के वहां के वैज्ञानिकों ने अनेक आधारहीन प्रयत्न किये। जगह-जगह सभाएं करके उनकी बे-सिर-पैर की आलोचना की गई।

विद्वानों और वैज्ञानिकों के इस कठमुल्लापन से आइन्स्टाइन के हृदय को बड़ा धक्का लगा। उन्हें इस बात का बड़ा दुःख था कि विद्वान लोग भी बिना सोचे-समझे न केवल यहूदियों का अपितु विज्ञान का विरोध कर रहे हैं।

नोबेल पुरस्कार की आधी राशि उन्होंने अपनी पहली पत्नी को भेज दी ताकि वह अपने दो पुत्रों को अच्छी शिक्षा दे सके। यद्यपि वे उससे विवाह-विच्छेद कर चुके थे पर मानवीयता के नाते उसकी सहायता करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे।

जर्मनी में यहूदियों पर हो रहे अत्याचारों को देख-देखकर इस एकान्तवासी विज्ञान-साधक के मन में

विचार उठा कि अपने धर्म भाइयों के प्रति मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है। उन्होंने यहूदी समाज के संगठन और उसकी समस्याओं को सुलझाने के काम में दिलचस्पी लेनी प्रारंभ की।

१९२१ ई० में आइन्स्टाइन यहूदियों के धर्म की जन्मभूमि इजराइल और विशेष रूप से वहां के इबरानी विश्वविद्यालय के लिए धन-संग्रह करने के उद्देश्य से अमेरिका गए। उनके साथ ब्रिटेनवासी यहूदी वैज्ञानिक डॉ० वेइत्समान भी थे। अमेरिका में आइन्स्टाइन का बड़ा भव्य स्वागत हुआ। तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति ने भी उनका स्वागत किया।

जिस उद्देश्य से वे अमेरिका गए थे, उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली।

बाद में जब इजरायल राष्ट्र की विधिवत स्थापना ई तो वेइत्समान उसके प्रथम राष्ट्रपति बने। स्टाइन से भी इजराइल के राष्ट्रपति का पद स्वीकार करने का अनुरोध किया गया था। किन्तु आइन्स्टाइन ने नम्रतापूर्वक इसे अस्वीकार कर दिया। उस समय उन्होंने कहा था, "विज्ञान की समस्याओं से तो मेरा कुछ-कुछ परिचय है, किन्तु मानव समाज की समस्याओं को सुलझाने की न मुझमें योग्यता है

और न अनुभव ही।"

जब आइन्स्टाइन अमेरिका से लौटे तो प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था। जर्मनी की करारी हार हुई थी। 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे' की स्थिति वहां पैदा हो गई थी। हार की सारी जिम्मेदारी जर्मनी के यहूदियों के सिर मढ़ी जा रही थी। उन्हें देशद्रोही समझा जा रहा था। यहूदियों के विरुद्ध घृणा और हिंसा का खुल्लमखुल्ला प्रचार किया जा रहा था।

आइन्स्टाइन जर्मनी की इस दुर्नीति के विरोधी थे। उनकी प्रतिष्ठा विश्व भर में फैल चुकी थी। वे जर्मनी में शोधकार्य अवश्य कर रहे थे किन्तु उस देश के नागरिक नहीं थे। जर्मनी के यहूदियों को संगठित करने में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था। वे यहूदियों के नेता बन गए थे। इसलिए जर्मनी के आतंककारि ने उनका विरोध प्रारंभ किया। यह विरोध दिनों बढ़ता गया। तरह-तरह से उनका अपमान किया जा लगा। यहूदियों पर दिन-दहाड़े हमले होने लगे। हालत यहां तक बिगड़ी कि यहूदियों का जर्मनी में रहना दूभर हो गया।

सारे अत्याचारों और अपमानों को देखते और

सहते हुए भी आइन्स्टाइन अपने काम में जुटे रहे। प्रुशियन अकादमी की बैठकों में आइन्स्टाइन की कुर्सी के दाएँ-बाएँ की कुर्सियों पर दूसरे सदस्य बैठते तक नहीं थे, जैसे आइन्स्टाइन अछूत हों या छूत की बीमारी वाले।

युद्ध में पिटे हुए जर्मनी के शासक अपनी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए पहले तो हार की जिम्मेदारी यहूदियों पर थोपते रहे किन्तु बाद के वर्षों में देश की बिगड़ी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करने लगे और यहूदियों का विरोध करना कुछ दब गया। कुछ वर्ष यही स्थिति चलती रही। पर ज्यों-ज्यों देश की स्थिति सुधरती गई, यहूदी-विरोध फिर पनपने लगा। उधर नाज़ीवाद के नेता फिर जर्मनी का साम्राज्य स्थापन करने के सपने देखने लगे। वे अपने को 'महामानव' सिद्ध करने लगे और शेष दुनिया पर अधिकार जमाना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानने लगे। उन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध में खोई प्रतिष्ठा को पुनः युद्ध करके प्राप्त करने का निश्चय किया। इस आन्दोलन का नेतृत्व हिटलर कर रहा था। वह जर्मनी की जनता को भड़काकर देश की बागडोर अपने हाथ में लेना चाहता था। और उसे इस कार्य में सफलता भी मिल गई। १९३३

ई० में जर्मनी का शासन नाज़ियों के हाथ में आ गया। हिटलर देश का तानाशाह बन गया। अब फिर युद्ध का पागलपन शुरू हो गया यहूदियों को देशद्रोही घोषित कर दिया गया। और सताया जाने लगा। सारा देश सैनिक तैयारियों में व्यस्त हो गया। देश के सारे साधन सैनिक शक्ति बढ़ाने के काम में लगाए जाने लगे। सारे जर्मनी देश की स्थिति एक सैनिक शिविर जैसी हो गई।

आइन्स्टाइन शान्ति के समर्थक और युद्ध के विरोधी थे। यहूदी समाज पर होने वाले अत्याचारों का भी वे विरोध करते थे। इसलिए उनका विरोध होने लगा। उनके विरुद्ध पोस्टर छपने लगे और खुले-आम यह कहा जाने लगा कि इसको अभी तक फांसी क्यों नहीं दी गई। उनकी वैज्ञानिक खोजों और सिद्धांतों को नकारा जाने लगा। उनकी पुस्तकों की होली जलाई गई। यह प्रयत्न भी हुआ कि 'आइन्स्टाइन सिद्धांत' में से किसी तरह आइन्स्टाइन का नाम हटा दिया जाए। उन्हें गुप्त साम्यवादी, भ्रष्ट यहूदी और देशद्रोही कहा जाने लगे। उन्हें जान से मार डालने की धमकियां दी जाने लगीं। आइन्स्टाइन के नाम, काम और आइन्स्टाइन को दुनिया से मिटा देने का

आंदोलन उग्र रूप धारण कर गया।

सौभाग्य से आइन्स्टाइन इन दिनों जर्मनी से बाहर गये हुए थे। वे ब्रिटेन और अमरीका में दो व्याख्यान मालाएं देने गये हुए थे। आइन्स्टाइन भली प्रकार जानते थे कि जर्मनी में रह सकना अब संभव नहीं है। एक बार उन्होंने स्पष्ट बयान दिया था जो समाचारपत्रों में भी प्रकाशित हुआ था। उन्होंने कहा था, "यहां पर जीवन-रक्षा असंभव है। सरकारी गुप्तचर सीढ़ियों पर सोते हैं और पहरा देते हैं।"

युद्ध-विरोधी अपनी एक घोषणा में एक बार उन्होंने कहा था, "कोई मनुष्य मार्च की धुन बजाते बैंड के ताल के साथ युद्ध के लिए जा रहा है, इसकी कल्पना से ही मुझे घृणा होने लगती है। संसार से युद्ध शीघ्रातिशीघ्र और सदा के लिये समाप्त होने चाहिए, क्योंकि इनसे बढ़कर दूसरी कोई बुराई नहीं है। मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाएं, यह मुझे स्वीकार है, किंतु मैं युद्ध में भागीदार नहीं बन सकता।"

आइन्स्टाइन के इस निश्चय का समाचार कि वे अब जर्मनी में न रह कर किसी अन्य देश में रहना चाहते हैं, सारी दुनिया में फैल गया। अनेक देशों

की सरकारों ने इन्हें अपने देश में रहने के लिए निमंत्रित किया। उन्हें तरह-तरह की सुविधाएं देने का भी आश्वासन दिया। उनको निमंत्रित करने वालों में ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

अमेरिका में

वे यूरोप के विभिन्न देशों की यात्रा कर रहे थे कि जर्मनी वालों ने समझ लिया कि हमारा शत्रु देश से भाग निकला है। उन्होंने घोषणा की कि आइन्स्टाइन को मारने वाले को बीस हजार 'मार्क' पुरस्कार में दिये जाएंगे। मार्क जर्मनी सिक्के का नाम है। इस घोषणा के दिनों में आइन्स्टाइन बेलजियम में थे। वहां की सरकार ने उनकी सुरक्षा के लिये यद्यपि कड़ी व्यवस्था कर रखी थी, फिर भी इस पुरस्कार की घोषणा से वह आइन्स्टाइन के जीवन को असुरक्षित समझती थी। यहां से आइन्स्टाइन ब्रिटेन चले गये। संसार के सभी भले लोग इस महान् वैज्ञानिक के सिर पर मंडराने वाले संकट से चिंतित थे। क्या पता, धन का लोभी हत्यारा कब उनकी जीवन-लीला समाप्त कर दे। उन पर दोबारा घातक हमला हुआ भी, पर वे बच गये। यहां से वे सपरिवार

अमेरिका चले गये। यह १६३३ ई० की बात है। अमेरिका के प्रिंसटन नगर में, उच्च वैज्ञानिक अध्ययन के लिए स्थापित नई संस्था में प्राध्यापक का पद स्वीकार करके वहीं बस गए।

यहां शोधकार्य करने के साथ शोधार्थियों का निदेशन भी वे करने लगे। उन्होंने शोधार्थियों को खुली छूट दे रखी थी कि जब चाहो, मेरे पास चले आओ और अपनी समस्याएं मेरे सामने रखो। कभी भी यह मत सोचो कि इससे मुझे असुविधा होगी।

अब शोधार्थी बिना संकोच के उनके पास जाकर अपनी समस्याओं का समाधान करने लगे।

प्रिंसटन में उनके दिन मजे से कटने लगे। यहां उन्हें काम करने की पूरी सुविधा थी।

अमेरिका में जा बसने के पांच वर्ष बाद आइन्स्टाइन की दूसरी पत्नी श्रीमती एल्से का १६३८ ई० में देहांत हो गया। पत्नी के वियोग से आइन्स्टाइन को गहरा आघात लगा। उनके बुढ़ापे के दिनों का सुख-चैन छिन गया। वे अपने को अकेला-अकेला अनुभव करने लगे। इस दुःख को भूलने के लिए वे अपने को सदा काम में उलझाए रखते।

जर्मनी में युद्धोन्माद अपनी चरम सीमा पर पहुंचा

हुआ था। वहां लड़ाई में काम आने वाले तरह-तरह के हथियार और दूसरी चीजें बन रही थीं। वहां के वैज्ञानिक लड़ाई की तैयारी में पूरी तरह जुटे हुए थे। आइन्स्टाइन को कहीं से खबर मिली कि जर्मनी के वैज्ञानिक परमाणु को तोड़ने के लिए प्रयत्न और प्रयोग कर रहे हैं। संभवतः उन्हें इस कार्य में सफलता भी मिल रही है।

एक महान् वैज्ञानिक के नाते आइन्स्टाइन इस बात के महत्त्व को दूसरों से अधिक जानते थे कि यदि जर्मनी परमाणु बम बना लेता है तो उसका कैसा भयंकर परिणाम निकलेगा।

यही सब सोच कर अगस्त १६३६ ई० में उन्होंने उस समय के, अमेरिका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट को एक पत्र लिखा था, जो प्रारंभ में दे दिया गया है।

राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने आइन्स्टाइन द्वारा लिखे सुझाव पर गंभीरता से विचार किया और परमाणु के नाभिक को तोड़ने के लिए कार्य आरंभ कर दिया गया। परमाणु के विखंडन का कार्य होने लगा।

इस कार्य में उन्हें सफलता मिली। अमरीका ने परमाणु बम बना लिया। पत्र लिखने के छः साल बाद परमाणु बम ६ अगस्त, १६४५ को जापान के हिरोशिमा नगर पर गिराया गया।

जब आइन्स्टाइन को परमाणु बम द्वारा हताहत जापानी नागरिकों के बारे में सूचना मिली तो वे बहुत दुःखी हुए । उनके दुःख का दोहरा कारण था। परमाणु बम बनाने की प्रेरणा उन्होंने ही दी थी और जिस सिद्धांत के अनुसार इसकी रचना हुई थी, वह भी इन्हीं का खोजा हुआ था ।

उन्होंने सोचा था कि यदि जर्मनी वाले परमाणु बम बनाने में सफल हो भी गए तो भी जब उन्हें पता लगेगा कि अमरीका ने भी इस तरह का बम बनाया है तो वे उसका विस्फोट नहीं करेंगे। इस प्रकार शक्ति-संतुलन कायम हो जायेगा ।

जर्मनी युद्ध में हार चुका था। पर जापान जो युद्ध में जर्मनी का साथी था, युद्ध बंदी के लिए तैयार नहीं था और अंत में परमाणु बम के प्रयोग से जापान ने भी हार मान ली।

इसलिए दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त हो गया। न्यूयार्क के एक बड़े गिरजाघर में विद्वानों और संत-महात्माओं की मूर्तियां स्थापित की गयी हैं। इन्हीं के बीच आइन्स्टाइन की मूर्ति भी स्थापित की गयी। केवल आइन्स्टाइन ही एकमात्र व्यक्ति थे, जिनकी मूर्ति उनके जीवनकाल में वहां रखी गयी थी ।

इस मूर्ति की स्थापना के संबंध में आइन्स्टाइन ने कहा था, "मुझे इसलिए गर्व नहीं है कि मूर्ति मेरी है, अपितु इसलिए कि मैं एक यहूदी हूं। मेरे कारण सही, एक यहूदी के प्रति ईसाई उदार तो हुए।"

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अनेक देश परमाणु बम बनाने के कार्य में जुट गए। यह देख कर आइन्स्टाइन बहुत दुःखी हुए। उन्होंने परमाणु बम बनाने वाले देशों को चेतावनी दी कि यदि परमाणु अस्त्रों का निर्माण रोका न गया, तो एक दिन धरती पर से मनुष्य का सर्वनाश हो जाएगा और समस्त सभ्यता नष्ट हो जाएगी। पर उनकी पुकार किसी ने नहीं सुनी।

इसके बाद भी वे वैज्ञानिक शोध के कार्य में लगे रहे। १९४९ ई० में उनका अविभाजित क्षेत्र (यूनिफाइड फील्ड) नामक नया सिद्धांत प्रकाशित हुआ। इसके गणित-संबंधी सूत्रों में, गुरुत्वाकर्षण और विद्युत-चुम्बक के क्षेत्रों को समन्वित कर दिखाया गया था। बाद में १९५३ ई० में इसी सिद्धांत का विस्तार कर उन्होंने, उन आधारभूत नियमों का वर्णन किया जिनके द्वारा इस विश्व के सारे कार्यों का संचालन-संपादन होता है।

कुछ समय बाद आइन्स्टाइन ने विश्व के ७ प्रमुख

वैज्ञानिकों के साथ एक घोषणा-पत्र तैयार किया। सभी वैज्ञानिकों ने इस घोषणा-पत्र पर सहमति प्रकट की।

फिर आइन्स्टाइन ने घोषणा की : "मैं उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूं। तब मैं अपनी सारी शक्ति लगा कर चिल्लाऊंगा......।"

लोग सोच रहे थे कि पता नहीं कौन-सी नई बात प्रकाश में आने वाली है।

१८ अप्रैल, १९५५ ई० को, ७६ वर्ष की अवस्था में आइन्स्टाइन का देहांत हो गया।

सादा जीवन, उच्च विचार

उनकी मृत्यु के लगभग तीन मास पश्चात् आइन्स्टाइन के मित्र और उनके आपेक्षिकता के सिद्धांत के व्याख्याता दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल ने वह सम्मिलित घोषणा-पत्र प्रकाशित कर दिया।

इस घोषणा-पत्र में कहा गया था—

"किसी भी आगामी विश्व-युद्ध में परमाणु अस्त्रों का उपयोग सुनिश्चित है। और ये अस्त्र मनुष्य जाति के अस्तित्व तक को मिटा सकते हैं। इस स्थिति में दुनिया की सरकारों से हमारा सबल आग्रह है कि वे आपसी मतभेदों को सुलझाने के लिए कोई शांतिपूर्ण

उपाय निकालें।"

जिस बात को वे न्यायपूर्ण समझते थे, उसका पक्ष लेते थे। वे इस बात की चिंता नहीं करते थे कि ऐसा करने पर दूसरे क्या कहेंगे। वे महान् वैज्ञानिक के साथ-साथ महामानव भी थे। मानवता से उन्हें प्यार था।

उनका जीवन बड़ा सरल और सादा था। अपनी वेश-भूषा के संबंध में भी वे काफी लापरवाह रहते थे। प्रसिद्धि बढ़ जाने के बाद लोग उन्हें घेरे रहते। कभी कोई वैज्ञानिक मिलने चला आ रहा है, तो कभी कोई पत्रकार। कभी कोई चित्र बनाने वाला तो कभी मूर्ति बनाने वाला। कभी कोई फोटोग्राफर तो कभी और। इसके अतिरिक्त विभिन्न समारोहों और भोजों के अवसर पर उन्हें निमंत्रित किया जाता। बड़े समारोहों और भोजों में जाना आइन्स्टाइन को कभी नहीं रुचा। फिर भी उन्हें जाना ही पड़ता था। वे अनमने भाव से इन समारोहों में सम्मिलित होते।

घरेलू मित्र-मंडलियों में वे खुल कर बातें करते। ठठाकर हंसते और हंसी-मजाक भी करते।

संगीत में उन्हें बचपन से ही रुचि थी और जीवन के अंत तक बनी रही। दूसरा शौक उन्हें पैदल सैर या नौका-भ्रमण का था।

उनकी आवश्यकताएं बहुत कम थीं। सादा जीवन और उच्च विचार में उनका विश्वास था। रुपये-पैसे जोड़ने की बात कभी उन्होंने सोची भी नहीं। वे विज्ञान से रुपया कमाने के विचार के विरोधी थे। १९३३ ई० में जब वे प्रिंसटन में प्राध्यापक नियुक्त हुए तो उन्हें कहा गया कि आप अपना वेतन स्वयं निर्धारित करें। आइन्स्टाइन ने अपने लिए तीन हजार डालर प्रति वर्ष वेतन के रूप में लेने को कहा। उन्होंने कहा कि यदि कम में निर्वाह हो सकता हो तो कम ले लूंगा।

उन्हें बताया गया कि इतने कम वेतन में निर्वाह नहीं हो सकता। बाद में अधिकारियों ने स्वयं ही उन्हें सोलह हजार डालर प्रतिवर्ष देना तय किया।

वे भाषण देने से बचते थे। एक बार किसी विज्ञान की संस्था ने उन्हें भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने उत्तर में लिख भेजा : "इस समय कहने के लिए मेरे पास कोई नयी बात नहीं है।"

कभी-कभी वे अपनी बात इस ढंग से कहते जो लोगों के गले नहीं उतरती थी। एक बार उन्होंने कहा था कि वैज्ञानिकों को जीविका के लिए ऐसे काम अपनाने चाहिए जहां उन्हें एकांत मिल सके और काम ज्यादा झमेले का न हो। वे प्राध्यापक पद को भी

वैज्ञानिक के लिए झंझट वाला मानते थे। वे कहते थे कि एक वैज्ञानिक के लिए जूते बनाने या समुद्र के प्रकाशगृह की नौकरी बड़ी उपयुक्त है। उनकी इस तरह की बातों से कुछ लोग उन्हें सनकी समझते थे।

आइन्स्टाइन काम करने के संबंध में कोई विशेष दिनचर्या बनाकर नहीं चलते थे। इसका अभिप्राय यह है कि वे ऐसा नहीं करते थे कि इतने घंटे तो यह काम करना ही है। साहित्य में भी उनकी अभिरुचि थी और शेक्सपियर के वे बड़े प्रशंसक थे।

उनके समकालीन साहित्यकार बर्नार्ड शा ने उनके बारे में कहा था :

"नेपोलियन आदि राजनेता साम्राज्यों के संस्थापक थे किंतु जिन महान् पुरुषों के नाम मैं ले रहा हूं, वे ब्रह्माण्डों के निर्माता हैं। और इनके हाथ मनुष्यों के रक्त से रंजित नहीं हैं। पिछले ढाई हजार वर्षों के इतिहास में इस तरह के नाम उंगलियों पर गिने जाने जितने ही हैं। पाइथागोरस, टालेमी, केपलर, कोपरनिक्स अरिस्टॉटल, गैलीलिओ, न्यूटन और आइन्स्टाइन !"

आइन्स्टाइन ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते थे उन्होंने कहा था, "मैं परमेश्वर को मानता हूं। इस विश्व की सृष्टि और व्यवस्था में वह अपने को प्रकट

करता है। मेरा विश्वास है कि संपूर्ण सृष्टि में ईश्वर की चेतन सत्ता कार्यशील है। विज्ञान का कार्य परमेश्वर की इस सुव्यवस्था को अधिकाधिक समझने का प्रयत्न करना है।"

आइन्स्टाइन ने विज्ञान के क्षेत्र में जो कार्य किया, उसके बड़े दूरगामी परिणाम निकलने वाले हैं। परमाणु शक्ति के रूप में उन्होंने शक्ति के एक ऐसे भंडार की चाभी हमारे हाथ में दे दी है, जो कभी खाली होने वाला नहीं है। अब संसार इस शक्ति का उपयोग मानव मात्र के कल्याण के लिए करता है या विनाश के लिए, यह राजनेताओं की सूझ-बूझ पर निर्भर करता है।

आज जो अमेरिका का अंतरिक्ष यान अपोलो-८ चंद्रमा की परिक्रमा करने और चंद्रमा की कक्षा में प्रविष्ट होने में सफल हो सका है, इसके पीछे भी चल-पिंडों की गति का नियम, जिसे आइन्स्टाइन ने खोजा था, कार्य कर रहा है।

कुछ सिद्धांतों के बारे में

आइन्स्टाइन ने भौतिकी के जिन सिद्धांतों की खोज की, वे निम्नलिखित हैं :

१. सापेक्षिता का विशेष सिद्धांत
२. द्रव्य और ऊर्जा में संबंध
३. सापेक्षिता का सामान्य सिद्धांत
४. प्रकाश की गति का सिद्धांत
५. ब्राउनियन गति का सिद्धांत
६. चलपिंडों की विद्युत गतिकी
७. विश्व के संचालक नियमों का एक सूत्र में ग्रथन ।

ये सभी सिद्धांत उच्चस्तरीय गणित पर आधारित हैं। उन्हें समझ सकना साधारण लोगों के लिए असंभव-सा ही है । अनेक वैज्ञानिक भी उनकी गहराई को नहीं समझ पाते । पर आइन्स्टाइन कहते थे कि इनमें ऐसा कठिन कुछ नहीं है । जिन लोगों ने भौतिकी का अध्ययन किया हो वे इन्हें समझ सकते हैं ।

इनका आपेक्षिकता का सिद्धांत विशेष प्रसिद्ध हुआ है । यह उनका सबसे पहला अन्वेषण था । उन्हें विशेष प्रसिद्धि इसी के कारण मिली थी । आपेक्षिकता का विशेष सिद्धांत आइन्स्टाइन को कुछ मान्यताओं पर आधारित है। उनमें पहली मान्यता जिसके आधार पर इसका नाम रखा गया है, यह है कि सब गतियां आपेक्षिक हैं। उदाहरण के रूप में, यह कहने

का कोई विशेष अर्थ नहीं होता कि 'यह कार ५० किलोमीटर घंटा की चाल से जा रही है।' इस कथन को अर्थपूर्ण बनाने के लिए वैज्ञानिक शब्दावली में कहना चाहिए कि धरती के सापेक्ष कार ५० मील प्रति घंटा की चाल से जा रही है। यद्यपि उक्त कथन भी कार की वास्तविक निरपेक्ष चाल नहीं बताता। कारण यह है कि हम जानते हैं कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूम रही है और सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षा में भी। सूर्य भी गति युक्त है और वह हमारी मंदाकिनी (ग्लैक्सी) के भीतर अपनी कक्षा में घूम रहा है। और हमारी मंदाकिनी भी अन्य मंदाकिनियों की तरह अंतरिक्ष में गतिमान है। अतः कार की निरपेक्ष गति जान सकना वस्तुतः असंभव है। क्योंकि ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो चल न रही हो।

आपेक्षिकता सिद्धांत की दूसरी मान्यता यह है कि समरूप (एक जैसी) चाल से चल रहे या बिल्कुल स्थिर (नहीं चल रहे) तंत्र में आप कोई भी प्रयोग कर के यह नहीं जान सकते कि तंत्र चल रहा है या स्थिर है।

इसकी जांच के लिए जब आप किसी ऐसी गाड़ी

में बैठे हों जो एक जैसी चाल से चल रही हो (चाल न कम होती है न बढ़ती है) तब निम्न प्रयोग करके देखिये :

अपने दाहिने हाथ में एक सिक्का लीजिए और उसे बाएं हाथ के ठीक ऊपर करके गिरा दीजिए। आप सोचेंगे कि सिक्के को ऊपर से नीचे गिरने में जितना समय लगा उतने में गाड़ी आपको कुछ आगे ले गई है और सिक्का आपके बाएं हाथ पर न गिरकर दूसरी जगह गिरेगा। परंतु ऐसा नहीं होगा। सिक्का ठीक आपके हाथ के ऊपर ही गिरेगा। प्रयोगशाला के कमरे में प्रयोग करने पर भी ऐसा ही होगा। इसलिए यह निश्चित हुआ कि समरूप गति से चलते तंत्र में किये गये प्रयोगों से वे ही परिणाम निकलेंगे जो किसी स्थिर प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों से।

इस सिद्धांत को अपनाकर उन्होंने कहा कि प्रकाश स्रोत चाहे जैसे भी चल रहा हो, प्रकाशग्राही चाहे जैसे भी चल रहा हो, प्रेक्षक के लिए प्रकाश की चाल सदा एक समान होती है। प्रकाश की चाल १८६००० मील प्रति सैकिंड अथवा किलो ३०००० मीटर प्रति सैकिंड है।

इस सिद्धांत को समझने के लिए नीचे कुछ

प्रचलित उदाहरण दिये जा रहे हैं। इनसे इस सिद्धांत का कुछ-कुछ अता-पता लग सकेगा।

मान लीजिए कि किसी रात को दो डाकू रेलगाड़ी के इंजन ड्राइवर और गार्ड दोनों को गोली से मार डालते हैं। गार्ड रेलगाड़ी के अंतिम डिब्बे में था। डाकू नीचे पटरी के पास खड़े थे। डाकुओं ने काफी पास से गोली चलाई थी। एक बूढ़ा जो रेलगाड़ी में ठीक बीच में बैठा हुआ था (गाड़ी का अगला और पिछला छोर उससे समान दूरी पर थे), दोनों गोलियों के चलने की ध्वनि को एक साथ सुनता है। आप कहेंगे कि दोनों गोलियां एक ही समय चली थीं। किन्तु स्टेशन मास्टर जो दोनों डाकुओं के ठीक बीच में था, उस गोली का धमाका पहले सुनता है, जिससे गार्ड मरा था। यह गार्ड और इंजन का ड्राइवर जो दोनों चचेरे भाई हैं, के एक करोड़पति चाचा ने अपनी सारी संपत्ति गार्ड के नाम वसीयत कर रखी थी, और यदि वह पहले मर जाए तो संपत्ति इंजन ड्राइवर को मिलती। संपत्ति के स्वामित्व का निर्णय इस बात पर निर्भर है कि पहले कौन मरा। मुकद्दमे की पैरवी करने वाले वकीलों का कहना था कि स्टेशन मास्टर और गाड़ी के बीच बैठा बूढ़ा, दोनों में से कोई

एक झूठ बोल रहा है। वास्तविकता यह है कि दोनों ही सच बोल रहे थे।

रेलगाड़ी गार्ड को लगी गोली वाले स्थान से इंजन ड्राइवर को लगी गोली के स्थान की ओर जा रही थी। इसलिए गार्ड को लगी गोली की ध्वनि को बूढ़े तक पहुंचने के लिए अधिक दूरी तय करनी पड़ेगी जबकि इंजन ड्राइवर को लगी गोली की ध्वनि को बूढ़े तक पहुंचने के लिए कम दूरी तय करनी पड़ेगी। गार्ड को गोली लगने के स्थान से गाड़ी के बीचोबीच बैठा वृद्ध इंजन ड्राइवर को गोली लगने के स्थान की ओर गाड़ी जाने के कारण उस ओर बढ़ रहा था। इसलिए पहली गोली की आवाज को बूढ़े तक पहुंचने में अधिक समय लगा और इंजन ड्राइवर को लगी गोली की आवाज को बूढ़े तक पहुंचने में कम समय लगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि एक घटना किसी गति-युक्त प्रेक्षक के लिए समक्षणिक हो तो उसके सापेक्ष स्थिर प्रेक्षक के लिए वही घटना समक्षणिक नहीं होगी। अतः समक्षणिकता निरपेक्ष नहीं, अपितु सापेक्ष है।

द्रव्य और ऊर्जा में सम्बन्ध

आपेक्षिकता के विशेष सिद्धांत पर शोध कार्य

करके आइन्स्टाइन ने (ऊर्जा=संहति×प्रकाश^2) ऊ =सं×प्रकाश^2 का जो सूत्र निकाला था, वह विज्ञान के सूत्रों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। शब्दों में इस सूत्र को यों कह सकते हैं : संहति के साथ प्रकाश वेग के वर्ग का गुणनफल ऊर्जा के बराबर होता है।

परमाणु बम की रचना का आधार उपर्युक्त समीकरण ही है। परन्तु अपनी दानवीय शक्ति के बावजूद परमाणु बम अपनी संहति का केवल थोड़ा-सा भाग ऊर्जा में परिवर्तित कर पाता है।

न्यूटन और आइन्स्टाइन

अनेक घटनाओं के फल न्यूटन और आइन्स्टाइन दोनों के सिद्धांतों के अनुसार समान ही होते हैं।

किन्तु ग्रहों की गति में न्यूटन के सिद्धांत के अनुसार कुछ अंतर दिखाई देता था। जब आइन्स्टाइन द्वारा प्रतिपादित सामान्य आपेक्षिकता सिद्धांत का उपयोग किया गया तो फल ज्यादा सही निकला।

अनेक वर्षों से यह पता था कि बुध ग्रह की प्रत्यक्ष कक्षा न्यूटन के सिद्धांत के अनुसार नहीं रहती। किन्तु जब आइन्स्टाइन के सिद्धांत के अनुसार गणना

की गई तो जो कक्षा आई वह प्रेक्षित कक्षा के अनुरूप थी। इस प्रकार विशाल मापक्रम की घटनाओं में न्यूटन की अपेक्षा आइन्स्टाइन का सिद्धांत सफल रहा।

सामान्य आपेक्षिकतावाद को परखने की दूसरी कसौटी प्रकाश की किरणों का वेग होता है। प्रकाश की किरणें जब तीव्र गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में से होकर जाती हैं तब इनका मार्ग किंचित् मात्रा में टेढ़ा हो जाता है। क्योंकि प्रकाश ऊर्जा का ही एक रूप है। अतः ऊर्जा द्रव्यमान के संबंध के अनुसार [संहति-मान को ऊर्जा में और ऊर्जा को संहति में बदला जा सकता है। जिसे ऊ=सं×प्र² सूत्र में दिखाया गया है।] प्रकाश में भी संहति होती है। और संहति को आकर्षित करना गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र का गुण होने के कारण, प्रकाश किरण का पथ किंचित् मात्रा में टेढ़ा हो जाता है। इसकी परीक्षा केवल सर्वग्रास सूर्यग्रहण के समय ही हो सकती है। क्योंकि सूर्य का प्रकाश बहुत तीव्र है अतः केवल सर्वग्रास सूर्य ग्रहण के समय ही किसी तारे को सूर्य के किनारे देखा जा सकता था। सूर्यग्रहण से पहले एक तारे की फोटो खींची गई थी ताकि अन्य तारों के सापेक्ष उसकी स्थिति मालूम हो सके। इसके

बाद जब पृथ्वी अपनी कक्षा में ऐसे स्थान में आती है कि वह तारा सूर्य के किनारे पर देखा जा सके, सूर्य का प्रबल गुरुत्वाकर्षण किरण पथ को इस प्रकार मोड़ता है कि तारे से आने वाला प्रकाश, प्रथम फोटो की तुलना में, भिन्न स्थान पर प्रतीत होता है।

इस सिद्धांत की प्रस्थापना के बाद २९ मई, १९१९ ई० में पहला सर्वग्रास सूर्यग्रहण होने वाला था। पर सर्वग्रास सब जगह तो होता नहीं। कहीं-कहीं होता है और वह भी केवल कुछ मिनट।

सर्वग्रास सूर्यग्रहण के समय तारों के फोटो लेकर उक्त सिद्धांत की जांच हो सकती थी। सर्वग्रास सूर्यग्रहण अफ्रीका और ब्राजील में दिखायी देने वाला था। इतनी दूर यंत्र-उपकरणों को ले जाना और वैज्ञानिकों के दल भेजना बड़े खर्च का काम था। इस जांच-पड़ताल की जिम्मेदारी ब्रिटिश ऐस्ट्रानोमिकल सोसायटी ने अपने ऊपर ली। दोनों स्थानों पर वैज्ञानिकों के दो दल भेजे गये। ब्रिटिश सरकार ने भी इस काम में आर्थिक सहायता दी।

पूरी जांच-पड़ताल करने पर आइन्स्टाइन का सिद्धांत सही निकला।

इसके बाद १९२२, १९२६, १९४८ में भी जब

सर्वग्रास सूर्यग्रहण आए तो परीक्षण किया गया। सामान्य आपेक्षिकतावाद सही निकला।

मूल आपेक्षिकतावाद की खोज आइन्स्टाइन ने १६०५ में कर ली थी। इन्हीं दिनों डाक्टरेट के लिए उन्होंने अपना निबंध भी प्रस्तुत किया था। इस समय २६ वर्ष की उनकी अवस्था थी और पेटेंट कार्यालय में क्लर्क की नौकरी करते थे। फिर भी उन्होंने जो कर दिखाया, उसे समझने में ही बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को वर्षों लग गये।

इन खोजों के संबंध में उनकी एक पांडुलिपि सन् १६४४ में साठ लाख डालर में बिकी थी।

संसार के बड़े-बड़े राजनेता आइन्स्टाइन से भेंट करना अपना सौभाग्य समझते थे। हमारे भूतपूर्व स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू १६४८ में जब अमेरिका की राजकीय यात्रा पर गये थे, तब वे भी आइन्स्टाइन से मिलने उनके निवास पर गये थे। उनके साथ उनकी बहन श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित तथा पुत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी भी साथ थीं। संसार के दोनों महापुरुष कोई दो घंटे तक आपस में विभिन्न विषयों पर बातें करते रहे। नेहरू जी ने इस महान् वैज्ञानिक की प्रयोगशाला भी देखी थी।

बाद में स्वदेश लौटने पर एक बार नेहरूजी ने कहा था कि लोग ऊंचे पदों के लिए लालायित रहते हैं। यदि वे ऊंचे काम करें तो संसार में पद के बिना भी उनकी मान-प्रतिष्ठा हो सकती है। उन्होंने कहा था, "आइन्स्टाइन किसी ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित न होकर केवल प्रोफेसर हैं। परन्तु उनके महान् मानवीय गुणों के कारण तथा विज्ञान में महत्त्वपूर्ण शोध करने के कारण सारे संसार में मान है।"

आइन्स्टाइन बड़े सीधे और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। भीड़-भाड़ और हल्ला-गुल्ला उन्हें पसन्द नहीं था। वे एकान्त के प्रेमी थे। उन्हें चुपचाप काम करते रहना पसन्द था। लम्बे-चौड़े भाषण झाड़ने में उनकी रुचि नहीं थी। वे व्यक्तिगत जीवन में और विश्व में भी शान्ति के समर्थक थे। युद्ध से तो उन्हें बचपन से ही घृणा थी।

अपने कपड़ों-लत्तों के बारे में भी लापरवाह थे। एक कमीज, साधारण-सी ढीली पतलून और चमड़े की जैकिट उनका पहनावा था। उनकी मूंछें और सिर के बाल भी प्राय: बढ़े रहते। उन्हें काटने-छांटने की चिन्ता आइन्स्टाइन कभी नहीं करते थे।

वे जब शोध के काम से थक या ऊब जाते, या

उन्हें अवकाश मिलता तो वे प्यानो बजाने लगते। संगीत का अभ्यास उन्होंने बचपन से किया था। यह उनकी माता की देन थी। संगीत की स्वर-लहरियों में वे खो जाते। संगीत को वे चित्रकला और मूर्ति-कला से श्रेष्ठ मानते थे।

कई बार जब वे बड़े-बड़े समारोहों में सम्मिलित होते तो लोग उनसे प्यानो बजाने का आग्रह करते। कभी-कभी वे बजा भी देते। एक बार एक समारोह में जब वे प्यानो बजाने लगे तो उसमें ऐसे रमे कि देर तक बजाते ही रहे। उधर बाकी कार्यक्रम में देर हो रही थी। किसी से यह कहते भी नहीं बनता था कि अब बस कीजिए।

उनकी पढ़ने की रुचियों के सम्बन्ध में एक बार किसी ने प्रश्न किया कि क्या आप दर्शनशास्त्र की पुस्तकें पढ़ते हैं?

इस पर आइन्स्टाइन ने सहजभाव से उत्तर दिया, "अभी तो मेरे नए आपेक्षिकता सिद्धान्त की पृष्ठभूमि पर दर्शन की रचना होने को है।"

एक बार कुछ छात्रों ने आइन्स्टाइन से प्रार्थना की कि अपने आपेक्षिकता के सिद्धान्त की कोई सरल-सुबोध व्याख्या बताएं।

आइन्स्टाइन ने उत्तर दिया, "अपने किसी अत्यन्त व्यक्ति के पास घंटा-भर बैठकर भी यही लगता है कि अभी कुछ ही मिनट हुए। किन्तु किसी अप्रिय स्थान में पांच मिनट भी एक घंटे जितने लम्बे लगते हैं यही आपेक्षिकता है।"

आज के युग को परमाणु युग कहा जाता है। यह ठीक भी है। परमाणु शक्ति के ज्ञान से शक्ति का एक अनन्त भण्डार ही मनुष्य के हाथ लग गया है।

जन-कल्याण के कार्यों के लिए परमाणु शक्ति का विकास और उपयोग कई देशों में हो रहा है। अन्य देशों में भी शीघ्र ही इस दिशा में कार्य प्रारंभ होने की संभावना है। चल-पिण्डों की गति की आइन्स्टाइन की व्याख्या के कारण ही आज चन्द्रमा की परिक्रमा संभव हो सकी है।

भौतिकी के नोबेल पुरस्कार विजेता कांपटन महोदय ने आइन्स्टाइन के बारे में कहा था, "आइन्स्टाइन इसलिए महान् हैं कि उन्होंने हमें विश्व का वास्तविक रूप दिखाया। और यह बात हमें स्पष्टता के साथ समझा दी है कि ब्रह्माण्ड के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है।"

परमाणु का रहस्य समझाने में आइन्स्टाइन की

देन महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य की प्रगति के इतिहास में आइन्स्टाइन का नाम सदा ही आदर के साथ लिया जाएगा और युगों तक अमर रहेगा।

□□